समाज में विधवाओं की स्थिति : एक विवेचनात्मक अध्ययन

डॉ0 अनामिका शर्मा*

भारतीय समाज में प्राचीन काल से ही स्त्रियों का बहुत ही आदरणीय, सम्मानजनक तथा महत्वपूर्ण स्थान रहा है। विशेषकर हिन्दू समाज में उन्हें प्रारम्भ से ही विवाह, शिक्षा और सम्पत्ति में अधिकार प्राप्त था। भारतीय धर्मशास्त्रों में उन्हें विद्या, शील, ममता, यश और सम्पत्ति का प्रतीक कहा गया। उनके बिना पुरुष अपूर्ण और अधूरा समझा गया।[1] शास्त्रकारों का कथन है कि स्त्री, स्नेह तथा सन्तान, ये तीनों मिलकर ही पुरुष पूर्ण होता है।[2] इस प्रकार स्त्री–पुरुष की 'शरीरार्द्ध' तथा 'अर्द्धांगिनी' मानी गयी है तथा 'श्री' और 'लक्ष्मी' के रूप में मनुष्य के जीवन को सुख और समृद्धि से भर देने वाली कही गयी है।[3] किन्तु पति की मृत्यु के पश्चात् वही स्त्री अशुभ, कुलक्षिणी तथा अभिशाप मानी जाने लगती है। भारतीय समाज में विशेषकर हिन्दुओं में विधवा होना अभिशाप या किसी पाप के कर्म के रूप में देखा जाता है। उनके ऊपर विभिन्न प्रकार की पाबन्दियाँ लगायी जाती हैं तथा जिस परिवार की कभी वह रीढ़ होती थी, उसी में उपेक्षित जीवन जीने के लिए बाध्य हो जाती है। इस शोध पत्र में समाज में विधवाओं की स्थिति का अध्ययन करने का प्रयास किया गया है।

हिन्दू धर्म में विवाह एक धार्मिक संस्कार माना गया है तथा पति–पत्नी के सम्बन्ध को केवल एक नहीं अपितु जन्म–जन्मान्तर का सम्बन्ध माना जाता है, जिसे तोड़ना संभव नहीं है। यही कारण है कि हिन्दू धर्मशास्त्रों में विधवाओं के पुनर्विवाह को वर्जित माना गया है। साथ ही पति की मृत्यु के पश्चात् शृंगार करना, सामान्य भोजन ग्रहण करना तथा पर–पुरुष का नाम लेना भी पाप कर्म माना जाता है। विधवा होने के पश्चात् स्त्रियों के सिर को मुंडवा दिया जाता है, उन्हें सादे (सफेद) वस्त्र पहनने के लिए बाध्य किया जाता है, इत्र–तेल आदि का प्रयोग नहीं करने दिया जाता तथा सार्वजनिक उत्सवों तथा शुभ कार्यों में उनकी उपस्थिति

असिस्टेण्ट प्रोफेसर, गृह–विज्ञान, धीरेन्द्र महिला महाविद्यालय, सुन्दरपुर, वाराणसी

वर्जित मानी जाती है। मनुस्मृति में एक स्थान पर कहा गया है कि पति के मर जाने पर विधवा पुष्प, कन्द और फल के आहार से अपना शरीर क्षीण करे तथा दूसरे पुरुष का नाम भी न लें।[4] पुराणों में भी विधवा के लिए कठोर जीवन अपनाने की बात की गयी है। भूमि पर शयन करना, क्रोध न करना, धूर्तता न करना, श्वेत वस्त्र धारण करना तथा जितेन्द्रिय रहना उसका परम कर्तव्य माना गया है। इसके अतिरिक्त धर्म शास्त्रकारों ने आभूषण का त्याग, मलीन वस्त्र धारण करना तथा केश न रखने का भी निर्देश दिया है।[5] स्कन्दपुराण में तो विधवा स्त्री के आशीर्वाद को भी ग्रहण करना वर्जित माना गया है। विधवा के आशीर्वाद को साँप के विष के समान कहा गया है।

इस प्रकार भारतीय समाज में विधवाओं की स्थिति अत्यन्त कष्टप्रद, दयनीय तथा उपेक्षित है। हिन्दू धर्म में पति की मृत्यु के पश्चात् स्त्रियों के लिए केवल दो कर्तव्य निर्देशित किये गये हैं, जिनमें से किसी एक का पालन करने की अपेक्षा उनसे की जाती है। प्रथम पति के साथ सहमरण या अनुमरण करना (सती होना) और द्वितीय ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए शेष जीवन व्यतीत करना। पति के साथ सहमरण या अनुमरण या सती होने की परम्परा का स्पष्ट प्रमाण तो वैदिक काल में नहीं मिलता किन्तु इसका संकेत विभिन्न वेदों में मिलता है। चौथी सदी ई0पू0 के पश्चात् विधवाओं के पति के साथ सती हो जाने का प्रमाण मिलता है। महाभारत में पत्नी का पति की चिता के साथ सती हो जाने के कई प्रमाण मिलते हैं। महाराज पाण्डु के मृत होने पर उनकी रानी माद्री ने अन्वारोहण किया था।[6] इसी प्रकार स्ट्रैबो ने तक्षशिला की स्त्रियों के लिए लिखा है कि वे मृत पति के साथ चिता में जल मरती थीं।[7] कालीदास ने भी इस प्रथा का संकेत 'पतिवर्त्मगा' पद द्वारा किया है। वृहत्संहिता में विधवा के लिए सती होना सबसे श्रेष्ठ माना गया है। इसी प्रकार पुराणों में भी विधवाओं के सती होने के अनेक प्रसंग मिलते हैं।[8] इस प्रकार वैदिक काल में विधवा के लिए पति की चिता के साथ जल मरने को ही सर्वश्रेष्ठ कर्म माना जाता था। जबकि बहुत से पुराणों में सती प्रथा को ब्रह्म हत्या से भी जघन्य अपराध माना गया। दूसरी ओर जो स्त्री सती नहीं होती उसके लिए वेदों में ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए शेष जीवन व्यतीत करने का अनुदेशन किया गया है। इसके लिए उसे सभी सुख एवं आराम को त्याग कर सादा एवं तपस्विनी का जीवन व्यतीत करने के लिए कहा गया है, इससे वह सभी पापों से मुक्त होकर परलोक को प्राप्त होती है किन्तु बौद्ध काल में विधवा पुनर्विवाह के भी उदाहरण मिलते हैं विशेषकर समाज के निम्न

वर्ग में विधवा पुनर्विवाह पूरी तरह से मान्य प्रतीत होता है, विशेषकर बाल–विधवाओं को पुनर्विवाह करने की अनुमति धर्मशास्त्रकारों ने दी है। किन्तु विधवा पुनर्विवाह को आज भी हमारे समाज में पूर्णतः मान्यता प्राप्त नहीं है। इसका प्रमुख कारण रूढ़िवादिता, अन्धविश्वास, अशिक्षा तथा स्त्रियों का अपने अधिकारों के प्रति अज्ञानता है। वैदिक काल में जिस प्रथा के स्वेच्छा से वरण करने की बात शास्त्रकारों ने की है मुगल तथा आधुनिक काल में उसे एक सामाजिक प्रथा बनाकर स्त्रियों को पति के साथ आहुत हो जाने के लिए विवश किया जाने लगा। मध्यकाल में सती प्रथा, विधवा पुनर्विवाह पर नियंत्रण, बहुपत्नी विवाह तथा बाल विवाह जैसी कुरीतियाँ समाज में व्याप्त हो गयी थीं। ब्रिटिश काल में राजा राम मोहन राय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, रानाडे, दयानन्द सरस्वती आदि समाज सुधारकों ने स्त्रियों के लिए विभिन्न आन्दोलन किये फलस्वरूप बाल विवाह पर रोक लगाने के लिए 1929 में अधिनियम पास किया गया। इसी प्रकार विधवाओं के पुनर्विवाह का अधिनियम (1856) भी पारित किया गया जिसमें विधवाओं को पुनर्विवाह करने की कानूनी मान्यता दी गयी। इसके अतिरिक्त मिशनरियों ने स्त्री शिक्षा को प्रोत्साहित किया। फलस्वरूप इस समय स्त्रियों की स्थिति में सुधार आया। सती प्रथा जैसी कुरीतियों पर पाबन्दी लगी किन्तु इसके पश्चात् भी विधवाओं के प्रति समाज की सोच में बहुत अधिक परिवर्तन नहीं आया। विधवाओं को समाज आज भी अपशकुन के रूप में देखता है, जहाँ एक तरफ पत्नी की मृत्यु के पश्चात् पुरुष को अपना जीवन चलाने के लिए पुनर्विवाह पर समाज बल देता है, वहीं दूसरी तरफ पति की मृत्यु के पश्चात् स्त्री को अकेला जीवन जीने के लिए बाध्य करता है। पति की अर्धांगिनी कही जाने वाली स्त्री का उसकी मृत्यु के पश्चात् पति की सम्पत्ति में भी कोई अधिकार नहीं दिया जाता अपितु उसे परिवार से निष्कासित कर दिया जाता है। कई बार धार्मिक अन्धविश्वासों की दुहाई देकर उन्हें आश्रमों में भेज दिया जाता है। ऐसी मान्यता है कि यदि वह परिवार के साथ रहेगी तो पारिवारिक मोह से विरक्त होकर एकाग्र मन से ईश्वर की प्रार्थना नहीं कर पायेगी जिससे अपने पूर्व जन्म के पापों का प्रायश्चित नहीं कर पायेगी तथा यदि प्रायश्चित नहीं किया तो बार–बार कई जन्मों तक विधवा का जीवन उसे प्राप्त होगा। पाप के प्रायश्चित एवं मोक्ष प्राप्ति हेतु उन्हें धार्मिक स्थलों पर आश्रमों में भेज दिया जाता है। वृन्दावन तथा वाराणसी में ऐसी बहुत सी विधवायें मन्दिरों, घाटों या गलियों में अपने जीवन–यापन के लिए भिक्षाटन करते हुए

मिल जायेगी। आश्रमों में रहने वाली विधवाओं की भी स्थिति बहुत अच्छी नहीं है, कई बार कम आयु की विधवाओं के साथ अमानवीय व्यवहार करने तथा उन्हें जबरन वेश्यावृद्धि में ढकेल देने के भी प्रमाण मिलते हैं। परिवार में भी कम आयु की विधवा स्त्री के साथ यौन–शोषण एवं उत्पीड़न के प्रमाण मिलते हैं।

इस प्रकार भारतीय समाज में विधवाओं की स्थिति आज भी दयनीय है। उनके साथ समाज के द्वारा अच्छा व्यवहार नहीं किया जाता। पति की मृत्यु के लिए उसे उत्तरदायी ठहराया जाता है तथा उसे मुण्डन, व्रत–उपवास, सफेद वस्त्र धारण, शृंगार न करने जैसे कठोर नियमों का जीवनपर्यन्त पालन करने के लिए बाध्य किया जाता है। किसी भी धार्मिक एवं सामूहिक उत्सवों में भाग लेना बुरा माना जाता है तथा आज के प्रगतिशील समाज में भी एक विधवा का चेहरा देखना अपशकुन माना जाता है। पति की मृत्यु के पश्चात् परिवार में उसके सभी अधिकार छिन लिये जाते हैं तथा एक उपेक्षित एवं अभिशप्त जीवन जीने के लिए बाध्य किया जाता है। किन्तु क्या वास्तव में एक स्त्री का अस्तित्व केवल उसके पति के जीवित रहने तक ही है? नहीं प्रत्येक व्यक्ति का अपना एक स्वतंत्र अस्तित्व होता है तथा प्रत्येक व्यक्ति को अपना जीवन जीने का अधिकार है। भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम में पति की मृत्यु के पश्चात् उसकी चल–अचल सम्पत्ति में पत्नी का कानूनन अधिकार है। साथ ही एक विधवा को पुनर्विवाह करने का भी कानूनी अधिकार प्राप्त है। किसी भी स्त्री को बिना उसकी इच्छा के घर से निकाल देना या उसका शारीरिक व मानसिक शोषण करना अपराध है। किसी को भी किसी सार्वजनिक स्थल एवं समारोह में भाग लेने का अधिकार भारतीय संविधान में प्राप्त है तथा उसे ऐसा करने से रोकना अपराध की श्रेणी में आता है। विधवाओं के साथ दुर्व्यवहार करना, बाल विवाह, बालिका भ्रूण हत्या तथा सती प्रथा तथा विधवाओं को हेय दृष्टि से देखना भी एक सामाजिक कुरीति है, जिसे समाप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए। विधवा पुनर्विवाह को न सिर्फ कानूनी बल्कि सामाजिक मान्यता भी प्राप्त होनी चाहिए तथा विधवा को कठोर तथा एकाकी जीवन जीने के लिए बाध्य करने के स्थान पर उसे पुनर्विवाह करने के लिए प्रयास करना चाहिए। पारिवारिक सम्पत्ति में पुरुष के समान ही स्त्री को भी अधिकार मिलना चाहिए जिससे उसे अपने अधिकार को पाने के लिए लम्बी कानूनी लड़ाई न लड़नी पड़े। साथ ही सरकार को भी विधवाओं के संरक्षण तथा निराश्रित विधवाओं के भरण–पोषण के और अधिक प्रयास करने चाहिए।

विधवाओं को दी जाने वाली सरकारी पेंशन की राशि (300 रु/माह) को अधिक करने तथा कम आयु की विधवा स्त्रियों के शिक्षा एवं रोजगार के लिए योजनाएँ बनानी चाहिए क्योंकि विधवायें तभी अपने अधिकारों के प्रति जागरूक तथा सशक्त हो पायेंगी, जब वह आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होंगी।

सन्दर्भ एवं टिप्पणी :

1. श0ब्रा0, 5.2.1.10; मनु0, 9.45
2. महाभारत, आदिपर्व, 74.40, वृहस्पति0 25.11
3. वृहदसंहिता, 74.5.5, 11, 15, 16; मनु0 4.26
4. मनु0 5.157
5. मत्स्यपुराण
6. महाभारत, आदि0 95.65
7. मैक्रिंडल, पृ0 69–70
8. कुमारसम्भव, 4.33, 35, 36, 45
9. विष्णुपुराण, 5.38.2, 5.98.3; ब्रह्मपुराण

* अग्रवाल, जी0के0, ''समाजशास्त्र'', आगरा, 2012
* आहूजा, राम, ''भारतीय समाज'', नई दिल्ली, 2009
* आहूजा, राम, ''सामाजिक समस्याएँ'', जयपुर, 2007
* अग्रवाल, डॉ0 गोपालकृष्ण, ''समाजशास्त्र'', आगरा, 2011
* पाण्डेय, विमलचन्द्र, ''भारतवर्ष का सामाजिक इतिहास''
* मिश्र, डॉ0 जयशंकर, ''प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास'', पटना, 2006
* सहाय, डॉ0 शिवस्वरूप, ''प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास'', नई दिल्ली, 2000
* सहाय, डॉ0 शिव स्वरूप, ''हिन्दू धर्म और सम्प्रदाय'', इलाहाबाद, 2010–11
* सिंह, डॉ0 राघव प्रसाद, ''हिन्दू राज्यशास्त्र'', वाराणसी, 1994
* सिंह, डॉ0 मदनमोहन, ''बुद्धकालीन समाज और धर्म
* मनुस्मृति : कुल्लूक भट्ट की टीका सहित, बम्बई, 1946

* मत्स्यपुराण : आनन्दाश्रम, संस्कृत सीरीज, पूना, 1907
* महाभारत : नीलकण्ठ की टीका सहित, पूना, 1929–33, गीता प्रेस, गोरखपुर
* विष्णुपुराण : बम्बई, 1889; विल्सन, 5 भाग, लन्दन, 1864–70 : गीता प्रेस, गोरखपुर, सं0 2009